The Research Dialogue

An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed / Refereed Research Journal
ISSN: 2583-438X
Volume-2, Issue-1, April-2023
www.theresearchdialogue.com

संवैधानिक संरक्षण की मरीचिका और आदिवासी जीवन का यथार्थ बरास्ते साहित्य

दिग्विजय कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर
बी0.एस.एन.वी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज
लखनऊ

सारांश

भारतीय राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था की एक बड़ी विडम्बना रही है कि उसकी चिन्ता की परिधि में भारतीय जनजातीय समाज कभी नहीं रहा। उसका अस्तित्व प्रारंभ से ही एक रहस्यमय बनवासी समस्या के रूप में वन–प्रांतर से जुड़ा रहा है और विकास क्रम में अपने अस्तित्व को उसी रूप में समेटे आधुनिक सभ्यता से प्रायः दूर अपने को उसे रखा हैं आज भी उसकी भौतिक पूँजी जंगल, जंगली खेत के छोटे–छोटे टुकड़े और झरनों–स्रोतों का पानी है। आज की दुनियावी व्यवहार–बुद्धि से सर्वथा रहित निश्छल निष्कपट दृष्टि एवं आचरण आज भी अधिसंख्य आदिवासियों की नैतिक पूँजी है। यह सही है कि लालची और स्वार्थी बाह्य सभ्यता के संपर्क ने उन्हें भी प्रभावित किया है। आम तौर पर वह प्रभाव उन्हें सदियों के शोषण और अपनी सभ्यता के अपमान का प्रतिकार करने को प्रेरित करता है न कि उन्हें नैतिक रूप से भ्रष्ट बनाता है।

विषय संकेतः आदिवासी जीवन का यथार्थ

प्रस्तावनाः–

आधुनिक काल के नवजागरण, पुनर्जागरण जैसे बौद्धिक आंदोलन जनजातियों तक अपने प्रभाव का विस्तार कर पाने में प्रायः असफल रहे हैं। परंपरागत सामंती व्यवस्था, महाजनी सभ्यता, मुठ्ठीभर अनाज के बदले पीढ़ियों की बेगारी जैसा शोषण जैसे कारक तत्व अंग्रेजी शोषणकारी शासन तंत्र में खूब फले–फूले।

इसके समानांतर ईसाई मिशनियों के धर्म–प्रचार, धर्मातंरण एवं समाज सेवा जैसे क्रिया–कलाप जनजातीय जीवन पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। इन सबके स्वाभाविक परिणामस्वरूप गैर आदिवासियों एवं प्रशासनिक अमलों के सम्पर्क में आने वाली जनजातियों–मुण्डा, उराँव, हो, संथाल, गोण्ड, भील, राजवंसी, गोरखा, भेदी, लेप्चा, भोटिया आदि में उनके अन्यायपूर्ण व्यवहार के प्रति असंतोष धीरे–धीरे धनीभूत होता गया। यही असंतोष विभिन्न जनजातीय विद्रोहों में इसे दीख पड़ता है। चाहे वह बिरसा का 'बलोया' हो या साँडतालों का 'छूल' अथवा मुण्डाओं का 'उलगुलान'।

जनजातियों के अंतहीन शोषण का चक्र स्वतंत्र भारत में भी बदस्तूर चलता रहा जबकि अब हमारा अपना संविधान था, शासन करने वाले अपने थे। फर्क यही था कि अधिकांश प्रभावी कानून पुराने, औपनिवेशिक जमाने के थे और उन कानूनों को लागू करने वाला प्रशासन मानसिक तौर पर अपने पूर्ववर्तियों से ज्यादा भिन्न न था । भूमिपतियों, पूँजीपतियों और अन्य सम्पन्न तबकों का प्रभाव पूर्ववत् था और मनुष्य का घोर स्वार्थ एवं प्रचण्ड लिप्सा भी पुरानी ही थी। 'एस्टेट एक्वीजीशन एक्ट' (1954), परिवार के आधार पर भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारण संबंधी (1971) आदि अनेक भूमि सुधार कानूनों के लागू होने के बाद भी भूमिहीन किसानों और आदिवासी कृषक मजदूरों की दशा नहीं सुधर सकी। स्थिति अब अधिक बदतर इसलिए हो गयी कि अपनी संवैधानिक व्यवस्था में शोषण के पारंपरिक औजारों ने जनजातियों के आक्रोश को और अधिक भड़काया। 1976 में संगठित नक्सलबाड़ी आंदोलन इस आक्रोश का एक बड़ा परिणाम था जो आज भी देश के एक बड हिस्से की सबसे अहम राजनैतिक व संशोधित कानून कानून–व्यवस्था संबंधी समस्या है।

आदिवासी आज अपने ही स्वाभाविक निवास स्थान में अल्पसंख्यक और उपेक्षित हैं। कभी खनिज संपदा के लोभ और से तो कभी वन्य–संपदा के लालच में बाहरी (दिकू) लोगों ने उनके घरों और खेतों को उजाड़ डाला। उनकी आजीविका नष्ट कर दी। यह समुदाय और भी समस्याग्रस्त हो गया।

सुप्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी ने अपने जीवन का एक लम्बा समय आदिवासियों और कृषक मजदूरों के साथ बिताया है। उनके जीवन, समाज की उन्होंने गहरी पड़ताल की है और उनके समुदाय की विभिन्न समस्याओं पर गहन अध्ययन किया है। उनका यह अनुभव और अध्ययन उनकी कथाओं– उपन्यासों एवं लेखों में बड़ी बेबाकी और स्पष्टता से देखा जा सकता है। उनकी कथाओं के पात्र वास्तविक व सजीव हैं जगंल का जीवन, जनजातियों की संस्कृति अपने यथार्थ रूप में उनकी कथाओं में अंकित है जब जीवन का चित्रण है तो स्वभावतः उनकी समस्याओं और, उसके कारणों की भी पड़ताल है। महाश्वेता आदिवासियों के शोषण, उनके असंतोष और छिटपुट असंगठित विद्रोह का प्रामाणिक दस्तावेज कथाओं के माध्यम से पाठकों के समक्ष रखती हैं।

उनके उपन्यासों कहानियों के विभिन्न पात्र शोषण की अंतहीन गाथा को अपनी वाणी देते हैं चाहे वह 'अग्निगर्भ' का बसाई टुडू हो, काली साँतरा हो, मातो डोम हो या 'चोटी मुण्डा और उसका तीर का चोटि मुण्डा, धानी मुण्डा, दारोगा, महाजन लाला बैजनाथ, तारकनाथ आदि अथवा 'मास्टर' द्रौपदी जैसे पात्र।

एक लेखक जनजातीय समस्याओं को किस रूप में देखता है? उपन्यास के एक आदिवासी पात्र का यह कहना क्या सच नहीं है – ''कहाँ महाजनों के खाते नहीं हैं? कहाँ बेगार नहीं है? कहाँ मुण्डा सुख से हैं? फिर भी इन्हें डर लगता है।'' इन्हें माने या शासन के प्रतिनिधियों को महाजन और साहूकारों के शोषण चक्र की यह दास्तान भी उतनी ही सच है ''तुम्हारे भाई ने कब किस अकाल में दस कच्चे संर चावल लिए थे, उसके लिए बेगार दिया उसके लड़के ने मेरे ददिया ससुर ने, मरे ससुर न.... ।

शोषण के इस अंतहीन सिलसिले में भारत की राजनैतिक शासन व्यवस्था अथवा परतंत्रता स्वतंत्रता का इन जनजातीय समुदाय पर विशेष प्रभाव न था। प्रभाव पड़ता भी कैसे? लगाम तो वही था, उसे थामने वाले कुछ हाथ भले बदल गये थे। लाला बैजनाथ या तीरथनाथ जैसे महाजन तब भी थे और अब भी उनकी बही भी वहीं थी। सूखे और अकाल की समस्याएँ की ज्यों की त्यों थी । मनमाने सूद पर कर्ज और बेगार जैसी प्रथाएँ भी वही थी। लेखिका का यह बयान उसके अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति है– 'अगस्त के आंदोलन ने चोटि आदि को स्पर्श तक नहीं किया। स्वाधीनता के लिए मानो वह दिकू लोगों की लड़ाई हो । दिकू लोगों ने कभी आदिवासियों को भारतवासी नहीं माना। लड़ाई और स्वतंत्रता में चोटि के लोगों का जीवन अपरिचित रह गया ।'' यहाँ चोटि की जगह उराँव भी हो सकता है, संथाल भी अथवा गोल्ड–लेप्चा भी ।

स्वतंत्र भारत में संवैधानिक व्यवस्था के तहत पंचायती राज अधिनियम लागू किया गया। उसे मजबूत करने का संकल्प लिया गया। लेकिन असल में हुआ क्या? जनजातियों की जीवन पद्धति, उनकी सभ्यता–संस्कृति को भली प्रकार जाने बिना वातानुकूलित कमरों में बैठ नीतियाँ बनाने और उसे लागू करने वाले जिम्मेवार लोग वस्तुतः उनकी संस्कृति और समाज को कैसे नष्ट कर हे थे! कथा का यह संदर्भ देखिए । 'चोटि ने गहरी साँस ली। बोला, ''तू है अपनी पंचायत का प्रधान।'' नाम ही कहा हूँ। हालत नहीं देखते? गौरमेन (गवर्नमेंट) ने पंचायत को लंगड़ा कर दिया है। अपने बाप–दादा के अमल में हम घने जंगल में रहते थेय क्या करते थे, क्या नहीं करते थे, उसे देखने गौरमेन नहीं आती थी। चोरी होने पर, घर के पड़ोसी से झगड़ा होने पर भी पंचायत की राय सब मान लेते थे। घना गाँव था। थाने से पंद्रह मील दूर था। उसमें कुआँ खोदने पर सब मेहनत करते थेय सड़क बनाने में सब मेहनत करते थे। धीरे–धीरे गाँव घना नहीं रह गया। धीरे–धीरे गौरमेन ने पंचायत की ताकत ले ली। हाँ चोटि ये पंचायत हमारी है, मैं उसका प्रधान हूँ। किन्तु.... ।'' यह 'किन्तु भारतीय शासन की नीति और नीयत पर बड़ा प्रश्न चिह्न खड़ा करता है।

आदिवासियों के कल्याण के लिए आदिवासी मामलों से संबंधित एक स्वतंत्र मंत्रालय का गठन संवैधानिक व्यवस्था के तहत किया गया। उनके बीच से कुछ मुट्ठी भर जागरूक पढ़े लिखे लोग राजनेता, सरकारी कर्मचारी, डॉक्टर–इंजीनियर अथवा अध्यापक बन रहे हैं। लेकिन बहुसंख्य लोगों की स्थिति यथावत है। समानता के अधिकार के तहत उन्हें विकसित समाज के समकक्ष लाने हेतु आरक्षण का विशेष प्रावधान किया गया है। यह आरक्षण शिक्षण संस्थानों में अध्ययन हेतु नामांकन से लेकर नौकरी और पदोन्नति तक है। लेकिन यह प्रयास भी अब तक असफल ही सिद्ध हो रहे हैं। सीट तक नहीं भर पाते। कुछ पूर्व से

विकसित और पढ़े–लिखे लोगों तक ही वे समस्त लाभ सिमट कर रह गये हैं और आम आदिवासी आज भी निरा जंगली समझा जाता है जिसे कोई भी ठग सकता है, उसके श्रम का शोषण कर सकता है। उन्हीं के बीच से बढ़े कुछ नेताओं ने जन–जाति समाज की सुरक्षा और कल्याण के नाम पर स्वतंत्र राज्य तक ले लिया लेकिन आज उनमें और दिकू महाजनों के चरित्र में कोई फर्क भी है?'' सब मिलकर वन संपदा और आदिवासी जनता के कर– राजस्व को उनके अधिकारों को लूटने में संलग्न हैं। झारखण्ड राज्य के हालात इसका एक उदाहरण–भर हैं। को उनके को लूटने में हैं।

उपन्यास का एक पात्र महाजन तीरथनाथ जब दारोगा से यह कहता है कि ''दारोगा जी, आजादी के बाद भी यह जगह जंगली है। यहाँ बहुत कुछ होता है जिसको दूर करना किसी थाने के बस का नहीं।'' तो इसके गहरे निहितार्थ हैं। मतलब साफ है। सकारात्मक बदलाव ही नहीं दिखता। बिहार बंगाल के ईंट भट्टों को देख आइए सब जगह मजदूर आदिवासी हैं जिन पर कोई श्रम कानून लागू नहीं होता। उपन्यास का पात्र हरवंश चड्ढा ईंट भट्टों का सफल कारोवार आदिवासी मजदूरों के सस्ते व कुशल श्रम से ही कर पाते हैं।

कानून– कायदा, न्याय–व्यवस्था सब उसके लिए छलावा है क्योंकि उनका व्यावहारिक औचित्य उनके लिए है ही नहीं। वे उसका लाभ उठाने की स्थिति में ही नहीं हैं। कथा का नायक चोटिट् मुण्डा अपने लड़के करमू से कहता है– ''मुण्डाओं को क्या सिर्फ मालिक महाजन मारते हैं? कानून मारता है, अदालत मारती है। सभी मारते हैं। आदिवासी को देखने में छूत लगती है। यह भी कहते हैं, घर में बैठकर चटाई बुन, टोकरी बुन, मदद देंगे। जमीन जायदाद की बात करने से कुछ न कर सकेंगे। कानून–अदालत करो। कानून–अदालत ! वकील कहाँ से मिलेगा? वकील रूपया लेगा। वह जो कुछ कहेगा, मुण्डा समझेंगे नहीं मुण्डा क्या कहता है, वे नहीं समझेंगे। मुण्डा के 'याँग' कहने से वकील को 'ब्याँग–माने मेढक–समझ में आता है और हाकिम की समझ में भी उल्टी ही बात आती है।'' आज उच्च और सर्वोच्च न्यायालयों की भाषाई नीति क्या चोटि के आरोप की ताइर्द नहीं करते? अभी अभी 'खैरलांजी हत्याकाण्ड के फैसले में जो दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है, वह कथानायक और उस जैसे करोड़ों पीड़ितों अछूतों की भावनाओं का ही निदर्शन नहीं हैं?

महाश्वेता लिखती हैं कि इस प्रकार के सताये किसान और आदिवासी भारत में पहले–पहल हिंसा की राजनीति लायें। ''यह होने पर भी भारत के नक्शे से कुछ–कुछ चिह्न पोंछकर मिटाये नहीं जा सकते। भूखे किसानों का शोषण बेरोक–टोक चल रहा है। जमींदारों ने बेनामी, देश की प्रायः सारी खेती योग्य भूमि कुछ हजार परिवारों की मिल्कियत में कर ली है। दूसरे नाम से चक्रवद्धि ब्याज से पीसना और बेगार लेना चल रहे हैं। ग्राम्य भारत का स्वरूप श्मशान की तरह है। सूखे में और गरमी में आदिवासी और अन्याय तथाकथित अवर्ण हिन्दू जाति सूखी नदी का कलेजा खोदकर पानी की तलाश करते हैं, भात का फेन और आमानी (पानी, जिसमें रात को भात भिगोकर रखा जाता है) बिकते हैं। पलामू के आदिवासी लोगों को चीना घास के बीज के सिवा और कोई चीज खाने को प्रायः नहीं मिलती।''

तो, ऐसे में विकल्प क्या है? लाखों आदिवासियों को इस हद तक अमानवीय स्थिति में जीने को छोड़ क्या कर हम विकसित और सभ्य– सुसंस्कृत कहलाने के काबिल हैं? क्या जी.डी.पी. का ग्रोथ रेट उनकी दशा से मेल खाता है? आदिवासियों के आंदोलन असंगठित हैं, कमजोर हैं, अतः सरकारी तंत्र और राज्य शक्ति उनका दमन आसानी से करने में सफल होती है।

विकल्प है ऐसी नीति के निर्धारण और उसके ईमानदार क्रियान्वयन में, जिसमें आदिवासियों को उनकी सभ्यता और संस्कृति को अक्षुण्ण रखते हुए मानवीय जीवन जीने का अधिकार हो। विकल्प उनके स्थानीय परिवेश को पूर्णतः संरक्षित करने में है। दिकू लोगों और सरकारी कारिंदों के शोषण से उन्हें बचाने को एक कारगर तंत्र की सख्त आवश्यकता है। यह भी पारिस्थितिकी के संरक्षण का एक गंभीर मसला है जिसमें वन्य और वन्य संपदा का संरक्षण भी शामिल है।

लेकिन जहाँ आजादी के साठ वर्षों के पश्चात् हमारा प्रजातंत्र वोट बैंक की सड़ांध में गोते लगाते राजनेताओं और भ्रष्ट नौकरशाहों की जागीर बन गया हो, देश की अधिसंख्य प्रजा बुनियादी सुविधाओं से भी सर्वथा महरूम अपनी किस्मत पर आँसू बहाने को विवश हो, ऐसे में बेजुबान और सर्वथा उपेक्षित आदिवासियों की बेहतरी की चिंता कौन करेगा?

संदर्भ सूची–,

- चोटि और उसका तीर (उपन्यास) महाश्वेता देवी, पृ0 15
- वही, पृ0 16,
- वही, पृ0 115,
- वही, पृ0 119,
- वही, पृ0 126
- वही, पृ0 149,
- अग्निगर्भ (उपन्यास) महाश्वेता देवी पृ0. 9

THE RESEARCH DIALOGUE

An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed / Refereed Research Journal
ISSN: 2583-438X
Volume-2, Issue-1, April-2023
www.theresearchdialogue.com
Certificate Number-April-2023/40

Certificate Of Publication

This Certificate is proudly presented to

दिग्विजय कुमार राय

for publication of research paper title

संवैधानिक संरक्षण की मरीचिका और आदिवासी जीवन का यथार्थ बरास्ते साहित्य

Published in 'The Research Dialogue' Peer-Reviewed / Refereed Research Journal and E-ISSN: 2583-438X, Volume-02, Issue-01, Month April, Year-2023.

Dr.Neeraj Yadav
Executive Chief Editor

Dr.Lohans Kumar Kalyani
Editor-in-chief

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at www.theresearchdialogue.com